चतुर्थ अध्याय

ओमप्रकाश वाल्मीकी की कहानियों में दलित जीवन की समस्याएँ

चतुर्थ अध्याय

''ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में दलित जीवन की समस्याएँ''

प्रास्ताविक -

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियाँ दलित जीवन का यथार्थ चित्रण कराती है। इनके लेखन के बारे में कुछ लोगों का यह कहना है कि इनकी कहानियाँ अविश्वसनीय और अतिरंजनापूर्ण हैं। लेकिन भोगे हुए यथार्थ, दर्द, पीड़ा, यातना और प्रताड़ना ही अविश्वसनीय और अतिरंजना हो तो ओमप्रकाश वाल्मीकि को अविश्वसनीय और अतिरंजना का लेखक कहना कोई गलत नहीं होगा । मराठी में एक कहावत है - '' स्वत: मेल्याशिवाय स्वर्ग दिसत नाही.'' अर्थात स्वयं मरे बिना स्वर्ग दिखाई नहीं देता । तात्पर्य यह कि दलित जीवन की पीड़ा गैर दलित को सरलता और आसानी से समझ में नहीं आती । प्रा. अरूण कांबळे जी के शब्दों में '' जिसका जलता है वही उसकी व्यथा जानता है, दलितों के दु:ख-दर्द को अनुभूत करनेवाला मनुष्य ही दलितों के बारे में लिख सकेगा । फुले जी को जो वेदना महसूस हुई वह अन्य लोगों को महसूस नहीं हुई क्योंकि फुले जी ने इस दु:ख का प्रत्यक्ष अनुभव लिया हुआ था ।''[1] इस कथन के अनुसार ही ओमप्रकाश वाल्मीकि ने स्वयं अपने जीवन में पीड़ा भोगी है। इस विषय को लेकर नामवर सिंह कहते हैं -'' जन्मना दलित होने के कारण अनुभव के जिन आसंगों से एक आदमी को गुजरना पड़ता है, उसका प्रत्यक्ष अनुभव स्वयं एक दलित को जैसा है, अपनी पूरी अनुभूतियों व कल्पना का विस्तार करने के बावजूद मैं, जो एक गैर-दलित हूँ, उस अनुभव को उसी तीव्रता और तनाव से आपको अनुभव नहीं करा सकता ।''[2] इस विवेचन से स्पष्ट है कि दलितों की

---

1 प्रा. अरूण कांबळे - दलित साहित्य प्रवाह आणि प्रतिक्रिया, पृष्ठ 76

2 ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृष्ठ 94, 95

पीड़ा अहम होती है और उसे समझने के लिए दलित ही चाहिए । यहाँ सुधीश पचौरी का कथन दृष्टव्य है - " जिस तरह औरत के औरतपन को पुरूष जैविक रूप में नहीं लांघ सकता उसी तरह गैर दलित, दलित के अनुभव संसार में जैविक ढ़ंग से प्रवेश नहीं पा सकता।"[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि ने ऐसी असीम पीड़ा को देखा है, भोगा है,जाना है, परखा है और अंततः शब्दबद्ध किया है। हजारों साल के जातीय दम्भ और वर्चस्व के साथ जीनेवाले घोर अमानवीय, असहिष्णु और बर्बर समाज से ह्दय परिवर्तन की उम्मीद करना मृगजल की कल्पना करने जैसा है। फिर भी सवर्णों से थोड़ी बहुत इन्सानियत की अपेक्षा कर भविष्य के प्रति आशावादी दृष्टिकोण रखना दलितों के लिए आकाश कुसुम की कल्पना नहीं होगी । ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियाँ कुछ इस प्रकार की ही अपेक्षा रखती हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कहानियों में समाज में चली आ रही रूढ़ि, परंपरा और सवर्ण समाज का दलितों के प्रति दृष्टिकोण, दलितों की भावना एवं उनकी समस्या आदि अनेक विषयों को छुने की कोशिश की है। यहाँ उनकी कहानियों में प्रस्तुत दलित जीवन की विविध समस्याओं का विवेचन-विश्लेषण दिया जा रहा है -

4.1 जातिवाद की समस्या -

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कहानियों में कुछ ऐसी समस्याओं का चित्रण किया है जो सिर्फ जाति के कारण उपजी हैं। लेकिन उसकी पीड़ा तथा वेदना तमाम मानव जाति को सोचने के लिए मजबूर कर देती है।

'कहाँ जाए सतीश' नामक कहानी में सतीश नाम का एक छोटा-सा बालक है, जो अपने माता-पिता के खिलाफ जाकर खुद काम करके शिक्षा हासिल कर रहा था । उसके माता-पिता की यह इच्छा थी कि सतीश महानगर पालिका में सफाई कर्मचारी बनें । लेकिन सतीश पढ़ना चाहता था, इसलिए कि उसके माता-पिता एवं मोहल्लेवाले जिस तरह से जीवन जीते हैं,उस तरह के जीवन से उसे छुटकारा मिल सके । सतीश के

---

1 राजेंद्र यादव - 'हंस' मासिक, जून 2000, पृष्ठ 160

अध्यापक ने उसे पंत के परिवार में रहने के लिए छोटी-सी जगह दिलवाई थी। सतीश अपनी पढ़ाई पूरी ईमानदारी और लगन से कर रहा था। वह पंत के परिवार का हिस्सा ही बन गया था । पंत जी की एक बेटी है जो सातवीं कक्षा में पढ़ती है। उसने सतीश को राखी बांधी थी। ऐसा कोई भी वातावरण नहीं था, जिससे यह साबित हो सके कि सतीश पंत के परिवार का सदस्य नहीं है।

एक दिन अचानक सतीश के माता-पिता पंत के घर में आते हैं " उनकी वेषभूषा और रंग-ढ़ंग देखकर मिसेस पंत के अंतर्मन में खलबली मच रही थी ।"[1] सतीश छह महीनों से घर से गायब है, इसलिए उनके मन में सतीश के प्रति करूणा एवं कातरता थी। सतीश के माता-पिता की आँखें सतीश को देखने के लिए तरस रहीं थीं। लेकिन उनकी ओर देखकर मिसेस पंत क्रोधित होती है। वह यह जानना चाहती थी कि यह गंदे लोग कौन हैं ? लेकिन यह गरीब, कमजोर और गंदे लोग सतीश के माता-पिता हैं यह जानकर अचानक मिसेस पंत पर आसमान टूट पड़ता है। वह एकदम चौंकती है। सतीश इनका बेटा है इसपर उसे विश्वास नहीं हो रहा था। मिसेस पंत के अचानक इन्सानियत के सारे गुण नष्ट हो जाते हैं। सतीश एक भंगी होकर मेरे घर में रह रहा है ? उसे लगा कि जैसे सारी चेतना लुप्त हो रही है। मिसेस पंत ने उस रात सतीश को घर से निकालने का निश्चय किया । सतीश को सारी हकीकत मालूम हो जाने पर उसके मन में एक बात पनपति रही थी कि क्या भंगी होने से रिश्ते टूटते हैं ? सुदर्शन पंत अपनी पत्नी को समझा रहे थे- " अब रात में कहाँ जाएगा, बच्चा ही तो है..... सुबह चला चाएगा .... अरे तेरी बेटी को इतना प्यार दिया है उसने .... भाई है उसका .... उसे इस तरह निकालोगी "[2] पंत की इन बातों से भी मिसेस पंत के मन का परिवर्तन नहीं हुआ । मेरी बेटी का भाई होने के लिए एक ड़ोम ही रह गया था ? ऐसी नफरत भरी बातों से सतीश को लग रहा था जैसे किसी ने गर्म सलाखों से उसके जिस्म पर पोर-पोर बाँध दिया है। सिर्फ शिक्षा के लिए छोटी उम्र में काम करनेवाला

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम, ('कहाँ जाए सतीश' कहानी से) पृष्ठ 49

2 वही पृष्ठ 52

छोटा सा सतीश उस रात दस बजे पैदल छह किलोमीटर दूर फैक्टरी जाता है। इस आशा से कि ऐजाज साहब एक रात रहने के लिए जगह देंगे । सतीश की सारी हकीकत सुनकर ऐजाज साहब कहते हैं ''यदि मिसेस पंत ने तुम्हें निकाल दिया है या तुम अपने माँ-बाप का घर छोड़ आए हो तो मैं इसमें क्या कर सकता हूँ और फिर मैं तो धंधेवाला आदमी हूँ । मेरा और तुम्हारा संबंध सिर्फ धंधे का है। इसके अलावा तुम्हारा और मेरा कोई संबंध नहीं है। यह तुम्हारी समस्या है, तुम निबटो, मैं क्या कर सकता हूँ । मैंने कोइ आश्रम तो खोल नहीं रखा है कि जो चाहे चला आए ।''[1] ऐजाज साहब के इन शब्दों ने सतीश के बाल मन पर आघात कर दिया । उनके कथन से सतीश के सारे सपने चकनाचूर हो गए । क्या भंगी समाज में जन्म लेना गुनाह है? जब तक जाति का भूत हमारे समाज में मँड़रता रहेगा तब तक सतीश जैसे मासूम बच्चे के जीवन में मिसेस पंत जैसी औरतें आती रहेंगी । रात के अँधेरे में झुकी-झुकी निगाहों से अपनी तमाम आशाओं को मृत देखकर थके हारे कदमों से सतीश फैक्टरी से बाहर निकल जाने के लिए विवश हो जाता है। उसके कदम सुस्त और निढ़ाल पड़ रहे थे। गहरा अंधेरा और भी गहरा हो गया था । सतीश सिर्फ चल रहा था, लेकिन कहाँ जा रहा था यह स्वयं नहीं जानता था । परंतु चलना उसके लिए जरूरी था। इसलिए वह चल देने को अभिशप्त था। स्थान छोड़ने के लिए विवश सतीश जाति से दलित था। सवर्णों की यह जातिवादी मानसिकता ने ही उसे घर से निकाल दिया । स्पष्ट है कि विवेच्य कहानी में लेखक ने जातिवाद की समस्या को उद्घाटित कर जातिवाद के कारण दलित जीवन की दयनीयता को उद्घाटित किया है।

'सपना' कहानी में शिरोड़कर नाम के अधिकारी हैं। उनका सपना था कि कारखाने की अवासीय कॉलोनी में एक मंदिर बनें। अवासीय कॉलोनी में सब सुविधा थी, सिर्फ एक मंदिर की कमी थी जिसे शिरोड़कर ने सपने के रूप में देखा था । उन्होंने अपने अधिकार में एक समिति की स्थापना की, जो मंदिर निर्माण में कार्य करें । अचानक शिरोड़कर का तबादला होने के कारण उनकी जगह राधास्वामी आये । तमाम कष्ट और

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम, ('कहाँ जाए सतीश' कहानी से), पृष्ठ 55

मतभेद में मंदिर समस्या खड़ी हो गई। क्योंकि मंदिर सूची में बहुत सारे नाम जुड़ गए। लेकिन राधास्वामी नटराजन के कहने पर बालाजी मंदिर का प्रस्ताव पारित करते हैं। चंदा जमा करने के लिए नटराजन अपने सहयोगी ऋषिराज को स्थान देते हैं। ऋषिराज अपने दलित मित्र अनिलकुमार गौत्तम के सहयोग से इस पवित्र कार्य में बड़ी लगन और तत्परता से काम करता है। अनिलकु मार गौत्तम एस.सी. है लेकिन ऋषिराज का विश्वसनीय और नेक मित्र है। जो मंदिर निर्माण कार्य में काफी सहयोग देता है।

मंदिर पूर्ण हो जाने के उपरांत बालाजी मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा के अवसर पर पंड़ाल लगाया गया था। जहाँ कॉलोनी के लोग आने शुरू होते हैं। ऋषिराज के परिवार को साथ लेकर अनिलकुमार गौत्तम पंड़ाल में आगे बैठता है। लेकिन इस कारण नटराजन एकदम चौंक जाता है और जाति की खोट मन में रखकर उसे जूते की रखवाली करने का काम बताता है इस संदर्भ में सुदेश तनवीर कहते हैं - " जब तक हम अपनी कथित धर्म सम्मत शास्त्रीय व्यवस्था को बदलने के लिए उठ खड़े नहीं होते तब तक समाज से जातीय दंश का निकाल पाना लगभग असंभव है।"[1] गौत्तम अपनी फँमिली को पंड़ाल से पीछे नहीं ले जाता । लेकिन नटराजन अपनी जिद्द पर अड़ा रहता है। इतने में ऋषिराज आता है, नटराजन उसके सामने अपनी मन की बात उगलता है " पूजा अनुष्ठानों में उन्हें आगे नहीं बैठाया जा सकता? यह रीत है - शास्त्रों की मान्यता है।"[2] अपने मित्र के प्रति अपमानित व्यवहार देखकर ऋषिराज को गुस्सा आता है और कहता है " मिस्टर नटराजन यह ज्ञान आपको आज ही प्राप्त हुआ है कि गौत्तम एस.सी है। जब वह दिन-रात आना खून पसीना बहा रहा था इस मंदिर को खड़ा करने में तब आप नहीं जानते थे ..कि वह एस.सी. है । तब आपने क्यों नहीं कहा कि जो एस.सी. हैं वह मंदिर के काम में हाथ न बटाए" ऋषिराज पूरी शक्ति से विरोध करता है। जिससे पंड़ाल का वातावरण बिगड़ जाता है। अपने मित्र को पंड़ाल से उठाने के पक्ष में ऋषिराज नहीं था । उसे समझाने की सारी सवर्ण कोशिशें बेकार

---

1 संपा.कुसुम चतुर्वेदी, -'नया मानदंड़' अप्रैल-जून, 2003, पृष्ठ 37

2 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम, ('सपना' कहानी से) पृष्ठ 29

हो जाती हैं। गौत्तम का हाथ पकड़कर वह पंड़ाल के बीचोबीच ले जाता है, माईक पर कुछ कहने से पहले ही नटराजन और उसके साथी बालाजी की घोषणा देते हैं। क्रोधित होकर ऋषिराज पंड़ाल गिरा देता है। पंड़ाल में भागदौड़ मच जाती है। गौत्तम एस.सी. है सिर्फ इसी कारण नटराजन ने उसका विरोध किया जिसका परिणाम इतना भयंकर हो जाता है। जातिवादी मनोवृत्ति ने सवर्णों की मानसिकता को संकुचित बना लिया है। इससे जातिवादी भावना को बढ़ावा ही मिल रहा है। इससे दलित सानंद जीवन जीने से कोसों दूर चले गए हैं 'बजरंग बिहारी' का कथन है - " दलित कहानियों की कथाभूमि प्राय: सामान्य प्रसंगों से नहीं बनती दलित समाज की पीड़ा उनके साथ होनेवाले अपमान जनक व्यवहारों पर ही कहानीकार की दृष्टि जाती है।"[1] ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कहानियों के द्‌वारा यही दायित्व सफलता से निभाया है।

4.2 निर्दोष को सजा -

निर्दोष या बेगुनाह दलित को दंड़ित करना या सजा देना हमारे यहाँ नई बात नहीं । वैमनस्य की दृष्टि मन में रखकर जान बुझकर एक गरीब दलित आदमी को गाय की हत्या के आरोप में फँसाकर उसे भयंकर सजा दी जाती है। जो समुचे मानव जाति के लिए शर्मनाक है। इसका चित्रण ' गोहत्या ' नामक कहानी में हुआ है।

' गोहत्या ' कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि हमारा समाज बेकसूर दलितों को कैसे दंड़ित करता है। मुखिया जी की गाय मर गई थी। लोग जंगल में सुअरों को मारने के लिए आटे में बारूद लपेटकर रखते थे और धोखे से मुखिया की गाय ने वह आटा खाया और गाय मर गई । लेकिन मुखिया का आरोप सुक्का पर आता है। सुक्का कई सालों से मुखिया का नौकर था। वह सारे काम करता था। सुक्का की शादी हो जाने के बाद उसकी दुल्हन संबंधी चर्चा गाँव में फैल गयी कि, उसकी दुल्हन बहुत सूबसूरत है। मुखिया को यह बात मालूम हो जाने पर वह मन की विकृति को शब्दों के

1 संपा. राजेंद्र यादव, बजरंग बिहारी तिवारी - हंस, दिसंबर, 2001, पृष्ठ 25

माध्यम से प्रकट करता है और सुक्का से कहता है कि कल तुम्हारी दुल्हन को हवेली में भेज दो । मुखिया के बदलते तेवर देखकर सुक्का काम रोखकर खड़ा हो गया " शब्दों को मुँह में चबाते हुए बोला -'वह हवेली नहीं जाएगी '। "[1] बाप दादों से चली आयी रीत को सुक्का चुनौती दे रहा था । मुखिया को लगा जैसे उसके सामने सुक्का नहीं कोई अजनबी है,जो उसके वजूद को नकार रहा है। उसे बहुत गुस्सा आता है।

उस दिन से मुखिया के मन में सुक्का के प्रति प्रतिशोध की भावना थी । पंचायत बैठ जाती है। गोहत्या किसने की, कौन है हत्यारा ? गाँव वालो की सारी नजरे बलेसर, जोंखू, चिमड़ा, रग्घू और सुक्का पर थी । क्योंकि गाँववालों का यह मानना था कि बारूद इन्होंने ही लगाया था। हालाकी ये सारे निर्दोष थे। पंचायत ने फैसला किया कि इन पाँच लोगों के नाम की परचियाँ लिखकर लोटे में डाली जाएँगी जिसके नाम की परची निकालेगी वही गाय का हत्यारा होगा । इस निर्णय पर सारा वातावरण खिन्न हो पड़ा । वे सभी कह रहे थे माय-बाप हम निरदोश हैं ... पर .... ? इस संदर्भ में राजेंद्र यादव लिखते है - " स्त्रियों और दलितों का अपना कोई इतिहास नहीं है, इतिहास उनका होता है जो अपने फैसले खुद लेते हैं और ये लोग वे हैं जिनके फैसले हम लेते रहे हैं।"[2] हमारे देश में जाति व्यवस्था बड़ी विचित्र है, इस संदर्भ डॉ. अर्जुन चव्हाण जी ठीक ही कहते है - "जातीय व्यवस्था हमारे देश वासियों के खून में सदियों से समा गयी है।"[3] आखिर वही हुआ जिसका ड़र था । सुक्का के नाम की परची निकली । उसने गिड़गिड़ाकर सबके सामने न्याय की गुहार की " सरपंच जी आप में भगवान बसते हैं, नियाय करो महाराज, मैं निरदोष हूँ ..... मैने गऊ हत्या नहीं की है.... मैं भगवान की कसम खाता हूँ .. मैंने गोहत्या नही की है ... मैं निरदोष हूँ । मैं कभी सुअर मारने ऊस जंगल में नहीं गया ..... मुझपर गोहत्या का

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम, ('गोहत्या' कहानी से) पृष्ठ 58

2 राजेंद्र यादव - राजकमल समूह - लिखित, शब्दोंका संसार, सारा आकाश,

3 डॉ. अर्जुन चव्हाण - राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन, पृष्ठ 101

इल्जाम मत लगाओ सरपंच जी ...।''[1] इस असहाय और धीमी होती गई आवाज पर किसी को दया नहीं आयी। मुखिया के कूट नीति के सामने सत्य ने भी अपनी गर्दन नीचे झुकायी। आखिर बेकसूर सुक्का को सजा सुनाई जाती है, जो मानवता पर बहुत बड़ा कलंक है। ''हल में काम आनेवाली लोहे की फाल को आग में तपाया जाएगा । जिसे दोनों हाथ में थाम कर सुक्का 'गऊमाता'-'गऊमाता'... कहता हुआ, दस कदम चलेगा । यदि सुक्का ने गोहत्या नहीं की है तो गर्म लोहे की फाल उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी ।''[2]

मुखिया की साजिश पर सुक्का इस बात को पहचानने के लिए परेशान था कि उसके साथ इस तरह के व्यवहार का असली कारण क्या है। गऊमाता के हत्यारे को मरते हुए देखने के लिए लोग उपस्थित हो रहे थे। ''लाल दहकती फाल जबरन उसकी हाथों पर रख दी गई। सुक्का की चीख बेबसी की सारी सीमाएँ तोड़कर धूल-धूसरित गलियों, कच्चे-पक्के मकानों से टकराकर वातावरण को दहला गई। ऐसी चीख जिसे सुनकर मरी गाय भी उठकर भाग जाए । भीड़ में एक खामोशी भर गई, मरघट के सन्नाटे सी ।''[3] मानव जाति को कलंकित करनेवाली ऐसी सजा जिसके कारण मानव जाति को मानव जाति पर क्रोध आ जाए । इस संदर्भ में प्रा. म. भी. चिटणीस का कथन दृष्टव्य है -''दलितों को आज भी मनुष्य के रूप में नहीं अपनाया जाता फिर यह न अपनाने वाला व्यक्ति पढ़ा लिखा हो या अनपढ़''[4] ऐसी पंचायत और समाज व्यवस्था पर हमें शर्म आनी चाहिए । जाति के आधार पर और मन में वैमनस्य की दृष्टि रखकर न्याय के पुजारी अन्याय करने लगे तो निश्चित है कि बेकसूर ही मारे जाएँगें । शिवकुमार मिश्र ठीक कहते हैं - ''आदमी और आदमी में फर्क करनेवाली यह मानसिकता सचमुच कितनी क्रूर, अमानवीय, बर्बर, हिंस्त्र और गलिच्छ है।''[5] निर्दोष बेचारे सुक्का को सजा देकर मुखिया ने अपनी मन की भड़ास निकाल दी ।

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम, ('गोहत्या' कहानी से), पृष्ठ 61
2 वही, पृष्ठ 62
3 वही, पृष्ठ 63
4 प्रा. म.भी. चिटणीस - दलित साहित्य प्रवाह आणि प्रतिक्रिया, पृष्ठ 10
5 संपा. आग्नेय, शिवकुमार मिश्र - साक्षात्कार, नवंबर, 2001, पृष्ठ 99

जैसे सचमुच ही गाँव गोहत्या के पाप से मुक्त हो गया हो । निरापराध सुक्का को सजा देनेवाली वर्तमान न्याय व्यवस्था पर आक्रोश प्रकट करते हुए ओमप्रकाश वाल्मिकि ने दलित जीवन की दयनीयता को इस कहानी में उद्‌घाटित किया है।

4.3 परंपरागत व्यवसाय को स्वीकारने की विवशता की समस्या

परंपरा के कारण न चाहते हुए सवर्णों की प्रस्थापित और स्थापित व्यवस्था की वजह से दलितों को अपनी मर्जी के खिलाफ व्यवसाय करना पड़ता है। इससे दलितों को आय से ज्यादा अपमान का सामना करना पड़ता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'बैल की खाल' नामक कहानी में काले और भूरे को परंपरागत व्यवसाय मजबूरन करनेवाले दलितों के रूप में प्रस्तुत किया है।

पंडित बिरिज मोहन का बैल मरने से अचानक गाँव को काले और भूरे की आवश्यकता महसूस होती है। क्योंकि ये दो ही थे जो गाँव के मरे हुए प्राणियों को गाँव से बाहर ले जाने का व्यवसाय करते थे। बैल को गाँव से बाहर ले जाना आवश्यक था क्योंकि वह गांधियाने लगा था । उस पर मख्खियाँ भी भिनभिनाने लगी थीं। स्वयं पंडित तीन-तीन बार उनके घर जा चुके थे।

पंडित बिरिज मोहन को बहुत क्रोध आया था । गाँव में किसी का भी मवेशी मरता तो उसे उठा ले जाकर बाहर फेंकना यह जिम्मेदारी काले और भूरे की थी । इसके बदले इन्हें कोई पैसे या अनाज नहीं देता । सिर्फ इसलिए ये दोनों निस्पृह भाव से काम करते थे कि उनके पुरखे पिछली कई पीढ़ियों से यह काम करते आये थे। मरे हुए प्राणियों की खाल उतारकर उससे जो भी पैसे मिलते उससे ही जीविका चलानी पड़ती । खाल के सिवाय इनको कोई दूसरा व्यवसाय नहीं था। आय के लिए मरे हुए प्राणियों का इंतजार ही इनके लिए आय की आशा थी । गरीब लोगों की स्थिति ही ऐसी होती है। डॉ. अर्जुन चव्हाण जी ठीक ही कहते हैं - ''इस वर्ग की स्थिति उच्च निम्न वर्ग से बदतर होती है, ये लोग प्रतिदिन रोजगार पाने में असमर्थ होते हैं। इन्हें एक दिन काम मिलता है तो दो दिन

बेकार रहना पड़ता है। इनकी आर्थिक प्राप्ति का न कोई साधन होता है और न कोई निश्चित मात्रा ।''[1] काले और भूरे का कई अता-पता न था । दोपहर की परछाई धीरे-धीरे लंबी हो रही थी । तब दोनों का आगमन होता है, क्रोधित पंडित बिरिज मोहन उन पर बिफर पड़ता है - ''कहाँ मर गए थे भोसड़ी के .... तड़के से ढूँढ़- ढूँढ़ के गोड्डे टूट गए हैं। और इब आ रहे हो महाराजा की तरियो .... इस बैल को कौन उठावेगा .... तुम्हारा बाप''[2] जितना कष्ट उन दोनों को ऐसे काम (व्यवसाय) से होता था उस हिसाब से उन्हें पैसे नहीं मिलते । सिर्फ पुरखों से यह काम होता आ रहा था, याने परंपरा ने यह काम उनपर सौंपा था वह भी उनकी मर्जि के खिलाफ । क्या है, और कैसी है ये परंपरा, प्रा. आदि कहते है- ''जब पीढ़ी दर पीढ़ी की गुलामी ने उनके माथे पर जाति लिख दी तब अपमान सहते हुए अपने अतीत की खोज में निकले तभी वह जान पाए कि हमारा भी कभी इतिहास रहा है।''[3] दलित युगों-युगों से शोषित रहे हैं। उक्त कहानी को पढ़ने से मन मे प्रश्न पीडित ़ोता है कि कैसी है ये शोषण करनेवाली परंपरा और यह परंपरागत व्यवसाय ? क्या ऐसे परंपरागत व्यवसाय दलित जीवन के दु:ख और समस्याओं पर और अधिक प्रभाव नहीं डालते ? क्या गैर दलित कभी इस पर विचार करते हैं ? आखिर कब ये स्थिति दलितों को लाचारी की जिंदगी त्यागकर अभिमान से जीना सिखाएगी ? कैसी है यह विचित्र वर्ण व्यवस्था जिसने दलितों के मन मस्तिष्क को रौंद डाला है। इस संदर्भ में वाल्मीकि जी ही कथन दृष्ठव्य है - ''भारतीय समाज में वर्ण एक सच्चाई है जिसने सदियों से इस देश के जनमानस को टुकड़ों में ही नहीं बाँटा उनके मानवीय संस्कारों को भी छिन्न भिन्न किया है।''[4] इसमें जाति और परंपरा के कारण अपमानित होकर अपनी मर्जी के खिलाफ काम करनेवाले काले और भूरे की परंपरागत व्यवसाय को स्वीकारने की विवशता की समस्या को ओमप्रकाश वाल्मीकि नें प्रस्तुत किया है।

---

1 डॉ.अर्जुन चव्हाण - राजेंद्र यादव के उपन्यासों में मध्यम वर्गीय जीवन, पृष्ठ 74
2 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम, ('बैल की खाल' - कहानी से) पृष्ठ 33
3 संपा. कुसुम चतुर्वेदी - प्रा. आदि - नया मानदंड, अप्रैल-जून 2003,पृ.59
4 संपा. राजेंद्र यादव - ओमप्रकाश वाल्मीकि - हंस, 1998, पृष्ठ 49

प्रस्तुत कहानी के जरिए कहानीकार दलितों की विवशता को वाणी देता है और इस बात को परिभाषित करता है कि हमारे समाज में दलितों को अपनी मर्जी से व्यवसाय स्वीकारने या नकारने की छुट आज भी नहीं दिखाई देती ।

4.4 पंरपरा के निर्वाह की समस्या -

दलित जीवन में कुछ ऐसी पंरपरा है जो नयी पीढ़ी को अपमान जनक लगती है और इससे छुटकारा पाने के लिए वह पीढ़ी विद्रोह करती है। इसी कारण उत्पन्न हुई समस्या ' सलाम ' नामक कहानी में चित्रित हुई है।

हरीश एक पढ़ा लिखा लड़का है। उसकी जाति में एक रसम है कि शादी के बाद बड़े लोगों के घर जाकर 'सलाम' करें और उनसे जो वस्तुएँ मिले उनका स्वीकार करें । ऐसी रसम न जाने कितनी सदियों से निभायी जा रही है। हरीश एक पढ़ा लिखा लड़का होने के कारण उसके पिताजी भी साफ-साफ अपने समधी से कहते हैं " हम 'सलाम' पर अपने लड़के को नहीं भेजेंगे "[1] लेकिन उस गाँव की स्थिति विचित्र थी । हरीश के ससुर हरीश को मना रहे थे, " बाप- दादों की रीत है, एक दिन में ना छोड़ो जावे है। वे बड़े लोग हैं । 'सलाम' पे तो जाणा ही पड़ेगा । और फिर जल में रहकर मगरमच्छ से बैर रखना ठीक नहीं है। और इसी बहाने कपड़ा-लत्ता,बर्तन-भाँड़े भी नेग दस्तूर भी आ जाते हैं।"[2] लेकिन हरीश को अपमान जनक रीत पसंद नहीं और वह साफ इन्कार कर देता है। यहाँ ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथन दृष्टव्य है - "हजारों वर्ष की प्रताड़ना, शोषण, द्वेष वैमनस्य और भेदभाव से दबा दलित अपनी अस्मिता की खोज के लिए जागरूक दिखाई पड़ता है।"[3] हरीश साफ-साफ कह देता है" मुझे न ऐसे कपड़े चाहिए न बर्तन, मैं

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - 'सलाम', पृष्ठ 16

2 वही, पृष्ठ 16

3 ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, पृष्ठ 29

अपरिचितों के दरवाजे 'सलाम' पर नहीं जाऊँगा ।''[1] हरीश के प्रति उसके ससुर की सारी कोशिशे बेकार साबित होती हैं ऐसी परंपरा आत्मविश्वास तोड़ने की साजिश है ऐसा हरीश को लगता है। गाँव का बल्लु रांघड़ हरीश के ससुर को चेतवनी देता है कि जल्द से जल्द तुम्हारे जँवाई को 'सलाम' पर भेज दे । इस चेतावनी पर वह दया की भीख मांगता है ''सिर पर लिपटा कपड़ा उतारकर बल्लु रांघड़ की पाँव में धर दिया, चौधरी जी, जो सजा दोगे भुगत लूँगा बेटी कू विदा हो जाण दो । जमाई पढ़ा लिखा लड़का है, गाँव देहात की रीत ना जाणे है ।''[2] फिर भी बल्लू रांघड़ मानता नहीं और उसपर बिफर पड़ता है। यहाँ अजमेर सिंह काजल का कथन दृष्टव्य है- ''भारतीय समाज व्यवस्था जटिल एवं असमान है। इस में रहनेवाली अनेक जातियों में से कुछ अपने आपको बहुत बड़ा मानकर आत्मभिमान के गौरव में चूर रहती है।''[3] उसी प्रकार गाँव के रांघड़ भी आत्माविभान में चूर हो गए थे। जाते-जाते बल्लु रांघड़ कहता है कि जुम्मन तेरे जँवाई को 'सलाम' पर आना ही चाहिए। जुम्मन उसके पैरों पर गिड़गिड़ाकर माफो की भीख मांगता है। लेकिन बल्लु को दया की जगह गुस्सा आता है। वह तिलमिलाते हुए कहता है । ''इन सहर वालों कू कह देणा ... कव्वा कबी बी हंस ना बन सके है ।''[4] वहाँ का सारा वातावरण बिगड़ जाता है, इस संदर्भ में मधुकर ताकसांड़े का कथन दृष्टव्य है- ''जिस हिंदू संस्कृति ने मानवता को पैर के नीचे दबाकर आम गरीब लोगों को पशुतुल्य जीवन जीने के लिए मजबूर कराया उसे बदनाम संस्कृति के अलावा और क्या कहा जा सकता है।''[5] लेकिन दलित जुम्मन के परिवार में निर्माण हुई स्थिति का सामना करने की ताकत निश्चितही नहीं होगी । ''हमारे देश में सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से जो दलित है उनमें और बाकी समाज में एकता होना

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - 'सलाम', पृष्ठ 16
2 वही, पृष्ठ 17
3 संपा. नंदकिशोर मिश्र - ' भाषा ' सितंबर -अक्तूबर, 2000, पृष्ठ 199
4 ओमप्रकाश वाल्मीकि - 'सलाम', पृष्ठ 18
5 बाबुराव बागुल - दलित साहित्य आजचे क्रांतिविज्ञान. पृष्ठ 11

आवश्यक है। जनता में विभाजन वही करते हैं जिन्हें वर्णव्यवस्था और शोषण चाहिए''[1] और ऐसी ही मानसिकता बल्लु रांघड़ में दिखाई देती है। यहाँ रमेश देशमुख का कथन दृष्टव्य है - ''आज का मानव व्यावहारिक धरातल पर अत्यंत हृदयहीन हो गया है, इसलिए वह दूसरों की आवश्यकता और मन:स्थिति को समझने की जरूरत नहीं समझता ।''[2]

4.5 बलि प्रथा की समस्या -

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने हमारे समाज में प्रचलित बलि प्रथा की समस्या को उजागर किया है। पूर्व परंपरा से चली आ रही बलि प्रथा पर 'भय' कहानी के माध्यम से ओमप्रकाश जी ने अपनी दृष्टि प्रखर कर ड़ाली है। दिनेश को न चाहते हुए भी सुअर बलि चढ़ाना पड़ता है जिसके कारण वह भी भयभीत होकर पागलों की तरह भागने लगता है। यह विकृत स्थिति बलि समस्या के कारण कहानी का अंत बन गई है।

'भय' कहानी का नायक दिनेश जिसके घर में देवी माई-मरदान को सुअर बलि चढ़ाने की परंपरा है। लेकिन दिनेश ऐसी परंपरा के खिलाफ है। न जाने कितने वर्षों से चली आ रही इस प्रथा को अचानक पूर्णविराम देना दिनेश के घरवालों को भगवान-भक्ति और परंपरा पर कठोर आघात कर देने जैसा लगता है। दिनेश ने इस संबंध में अपनी माँ से कहा था ''माँ, पूजा ही करना है तो फल-फूल, हलवा-पूरी से कर लो....''[3] लेकिन नहीं मानी। माँ उसे कहती है ''जीते-जी तेरी पिता जी ने माई-मरदान को पूजने ना दिया, शादी के वक्त मेरे बाप ने साफ-साफ कह दिया था कि हमारे घर में माई मरादान की पूजा होवे है। जो लड़की के गेल जावेगी । वहाँ भी तुम्हें माई मरदान को पूजना पड़ेगा। उस रोज तो कुछ ना बोल्ले । बाद में बदल गए । बेट्टे दीनू कोई अपने देवी-देवताओं को छोड़ सकाता है

1 वही, पृष्ठ 115
2 डॉ. रमेश देशमुख - आठवे दशक की हिंदी कहानियों में जीवन मुल्य, पृष्ठ 67
3 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम, ('भय' कहानी से) पृष्ठ 42

भला ! अपनी जड़ों को छोड़कर पेड़ की भी कोई गत है।''[1] माँ की ऐसी जबरदस्ती पर दिनेश की एक न चली । उसके मामा का भी यही कहना था कि वह पढ़ लिखकर अपनी परंपरा का पूजा-पाठ बंद करना मुर्खता है। माँ के मन में छिपा एक ड़र भी था कि, माई मरदान की कोप से ऐसा वैसा कुछ न हो । मामा ने माई मरदान की दहशत की कहानियाँ सुनाकर उनके मन में ड़रावना खयाल पैदा किया था। इसके कारण मजबूरन दिनेश को परिस्थिति से न चाहते हुए भी समझौता करना पड़ा ।

दिनेश सुअर लाने के लिए किशोर को साथ लेकर चला जाता है। सुअर खरीदने पर उसे काँटने की समस्या निर्माण हुई । सुअर को कोलोनी में ले जाकर काँट नही सकते थे। क्योंकि वहाँ किसी को मालूम नहीं था दिनेश नीचली जाति का है। किशोर कहता है, पूजा तुम्हारी हाथों से होनी है तो तुझे ही काँटना पड़ेगा । ''काफी जिद्दोजेहाद के बाद दिनेश ऊपरी तौर पर तैयार तो हो गया, लेकिन अंतर्मन तैयार नहीं था। उसे लग रहा था जैसे वह कोई अपराध करने जा रहा है।''[2] बच्चे की चिचियाहट से मादा सुअर विकराल रूप धरकर दरवाजे पर लगातार टक्कर मार रहीं थी । दिनेश ने माई मरदान का स्मरण करके सुअर पर छुरी चलाई, वह तड़प कर शांत हो गया था और उसको टुनकर गोश्त का बोरा उठाकर चले जाते हैं। दिनेश को ड़र था कि कोई इन्हें देख न ले । किसी को पता न चले कि हम निचली जाति से हैं और सुअर का गोश्त खाते हैं। इसलिए बड़ी सावधानी से घर जाते हैं। दिनेश ड़र के मारे पीघलता जा रहा था। विचित्र अंद्धश्रद्धा ने उस अजीब से चक्रावात में फँसा दिया था। इस संदर्भ में पंडित नेहरू जी का कथन दृष्टव्य है - ''अधिकांश सामाजिक समस्याओं के मूल में अंधविश्वास रूढ़ियों का आँखें मूँदकर पालन करता है।''[3] दिनेश के मन में दूसरा ड़र था कि अकसर रामप्रसाद तिवारी इनके घर आते थे, वह आज न आ जाए। दुर्भाग्यवश तिवारी आ ही जाता है। माँ उसे झूठ बोलके किसी तरह निकाल देती है, वह जाते वक्त कहता है,कि दिनेश को उसने गंदी बस्ती में देखा था । रामप्रसाद तिवारी तो चला

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम, ('भय' कहानी से), पृष्ठ 42

2 वही, पृष्ठ 43

3 रामलाल विवेक - अधुनिक भारत के निर्माता - पं. नेहरू, पृष्ठ 136

जाता है लेकिन अपने पीछे गहरा सन्नाटा छोड़के । तिवारी का भय दिनेश को लगातार विचलित कर रहा था। अपनी पोल न खुले इस विचार से वह भयभीत हो रहा था। उसकी आँखें लाल-लाल हो गई। उसे नींद नहीं आ रही थी। दूसरी तरफ उसे लग राह था "मादा सुअर लाल लाल आँखें और लंबे-लंबे दाँत निकाले सामने खड़ी है, उसके पीछे तिवारी हाथ में लम्बा छुरा लिए दिनेश की ओर बढ़ रहा है।"[1] दुविधापूर्ण भयावह परिस्थिति में फँसा दिनेश पागल होता जा रहा था । डा. अजमेर सिंह काजल कहते हैं- "धार्मिक क्रियाओं के ओट में पनपनेवाले अंद्धविश्वासों ने समाज की बहुत हानि की है।"[2] इसका उदाहरण खुद दिनेश बन गया था। दिनेश चिल्लाकर बोला - "वह देखो ..... सामने ख ड़ी है..... वह देखो तिवारी भी खड़ा है ... उसे मालूम हो गया है ..... वह सबको बता देगा .... सकबो... वह चींख रहा था ।"[3] अनजाना भय दिनेश के रगों में घूस गया था। परंपरागत बलि प्रथा ने उसे पागल बना दिया । दिनेश बदहवासी में दौड़ रहा था, पागलों की तरह और उसके पीछे मामा और किशोर भी गए । बलि समस्या और जाति भय से उपजी दोहरी समस्या कहानी की परिसमाप्ति है। अंद्धश्रद्धा और बलि-प्रथा से उपजे भय के मनोविज्ञान को ओमप्रकाश वाल्मीकि ने सफल और चित्रात्मक अभिव्यक्ति दी है।

4.5 जाति की हीनता से दबे रहने की समस्या -

जातीयता इस विस्तृत और सुंदर भारत को लगा कलंक है। दलितों को इसी जातीयता ने गुलामी, दु:ख, वेदना और दुरावस्था के सिवा कुछ नहीं दिया है। जाति के नाम पर जीना सबसे भयावह और तकलीफ देह होता है। हर वक्त उन्हे नीचा दिखाना, बिना कपड़े उतारे उन्हें नंगा करना, उनकी बेइज्जती करना आदि व्यवहार तो इनके साथ होते ही रहते हैं। इन विकृतियों से बचने के लिए और समाज में इज्जत से जीने के लिए विवशता

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम ('भय' कहानी से) पृष्ठ 46
2 कुसुम चतुर्वेदी - नया मानदंड - अप्रैल-जून, 2003, पृष्ठ 64
3 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम ('भय 'काहनी से) पृष्ठ 47

वश कुछ लोग जाति छिपाके जीते हैं और अंततः उसका परिणाम ठीक उसके विपरीत हो जाता है। जाति की हीनता ग्रंथी दबाववश अस्वाभाविक आचरण कर बैठती है और पश्चाताप के रूप में व्यक्ति किसी दुर्बल और निरिह, विचित्र रूप में परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। ऐसे ही घटनात्मक चरित्रांकन ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी 'अंधड़' कहानी में किया है।

'अंधड़' कहानी में मि. लाल वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत हैं जो जाति से एस.सी. है। अपनी पत्नी और दो बच्चों सहित जिंदगी गुजार रहें थे। ऊँची नौकरी और मान-सम्मान के लिए वे सबसे अपनी जाति छिपाके रखते थे। यहाँ तक की जाति का पता न चले इसलिए अपने रिश्तेदारों को भी अपने से दूर रखते थे। कोई गल्लती से इनके यहाँ आ भी जाता तो इनका बुरा व्यवहार देखकर दुबारा आने की हिम्मत न होती थी। "यह बात सभी रिश्तेदारों में फैल गई थी,' वे तो बड़े लोग हैं 'छोटे लोगों से उनका क्या मेल-जोल, वे तो जात छिपाकर रहते हैं ।'अब वे किसी को पहचानते नहीं '। पढ़े-लिखे लोग होते ही ऐसे हैं।"[1] ऐसे ताने-तितने इनके बारे में सुनने को मिलते थे। एक बार पत्नी ने मायके जाने का जिक्र किया तो वे बिकर पड़े थे। " मैं जिस गंदगी से तुम्हें बाहर निकालना चाहता हूँ..... तुम लौट-लौटकर उसी में जाना चाहती हो । तुम वहाँ जाओगी, तो वे भी यहाँ आएँगे । मैं नहीं चाहता। यहाँ लोगों को पता चले कि हम 'शेडयूल्ड कास्ट' है। जिस दिन लोग ये जान जाएँगे तब यह मान-सम्मान सब घृणा,द्वेष में बदल जाएगा । "[2] मि. लाल यह नहीं चाहते थे। जहाँ एक ओर उन्हें अपने परिवार,स्वाभिमान एवं अस्तित्व के लिए लढ़ना पड़ता था वहाँ दूसरी ओर पूरे सवर्ण समाज की प्रताड़ना उन्हें असहाय लगती थी।

एक दिन सविता को पत्र आया कि दीपचंद चाचा की मृत्यु हो गयी । इस खबर से मि.लाल बहुत दु:खी होते हैं और दीपचंद चाचा के गाँव जाने का निश्चय करते हैं। दीपचंद चाचा ने ही उन्हें पढ़ाया था। सविता से शादी दीपचंद चाचा की वजह से ही हुई थी।

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम ('अंधड़' कहानी से) पृष्ठ 87

2 वही, पृष्ठ 86

वैज्ञानिक की नौकरी और आत्मसम्मान के रोग में फँसे मि.लाल अपनी पुरानी यादें और अपने लोगों को भूल गये थे। लेकिन आज दीपचंद चाचा की मृत्यु उन्हें भूतकाल याद करने को मजबूर करती है। जाति के कारण ही अपनों को भूलनेवाले मि, लाल सत्य से कब तक भागते फिरेंगे ? इस संदर्भ में डॉ. अजमेर सिंह काजल का कहना है- "चाहे आप जाति छिपाते रहो, धर्म बदलते रहो, लेकिन अंततः जाति के जन्मना रूप से ही पहचानते जाते हो यही भारतीय समाज का कटु यथार्थ है।"[1] इस बात से मि. लाल परिचित न थे। लेकिन दीपचंद चाचा की मृत्यु ने उनके जीवन के पन्ने ही पलट दिये।

मि. लाल अपनी बच्ची एवं पत्नी सहित गाँव तो जाते हैं लेकिन वहाँ का गंदा माहौल देखकर आधुनिक विचारों में पली उनकी बेटी पूछती है ये गंदे लोग कौन है ? ये लोग तो पिंकी के ही मामा, चाचा हैं यह सुनकर उसे बुरा लगता है। अपने पापा ने ही यह बात हमसे छिपाई पापा का अस्पष्ट और स्थूल रूप देखकर उसके मन में पापा के प्रति अनजानी-अनमापीं गहराई ही सामने आ जाती है। पिंकी उन्हें इस तरह कोसती है कि जैसे वह बहुत बड़ी हो गई हो। "आपने इनके लिए क्या किया ? आइ थिंक यू हैव इग्नोंर्ड देम, आप को ऐसा नहीं करना चाहिए था डैड । ये लोग क्या सोचते होंगे आपके बारें में ? ।"[2]

मि. लाल ने अपनी बेटी को भी जाति के जिक्र से दूर रखा था। लेकिन पिंकी की बातों से लाल के मन पर अंधड़ मच जाता है और अपने किए पर पश्चाताप हो जाता है। पिकी के सवाल उन्हें ज्यादा ही विचलित करने लगते हैं। वे सोने की कोशिश कर रहे थे, लेकिन नींद नहीं आ रही थी। उनके खयालों में पिंकी के शब्दों की प्रतिध्वनि गूँज रहीं थी 'आपने यह ठीक नहीं किया डैड....... मि.लाल पश्चातापों के बीच और दु:खों के साएँ में अपनी नींद तलाशते रहे ।

जाति की हीनता से दबे रहकर अपनों से दूरी और अंततः पश्चाताप से दग्ध दलित की दयनीय मनोदशा मि. लाल के जरिए 'अंधड़' कहानी से खास रूप में प्रकट हुई है।

---

1 कुसुम चतुर्वेदी - नया मानदंड, अप्रैल-जून, 2003, पृष्ठ 64

2 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम ('अंधड़' कहानी से) पृष्ठ 93

4.6 अनपढ़ लोगों की समस्या -

अनपढ़ लोगों को बड़े उच्चकुल के लोग मदद के नाम पर फँसाते हैं। अनपढ़ की प्रामाणिकता का गलत फायदा उठाकर उसका शोषण करनेवालों मानवता रहित संवेदना शून्य समाज की समस्या का प्रतिनिधित्व 'पच्चीस चौका ढ़ेड सौ' कहानी करती है।

सुदीप को स्कूल में मास्टरजी पहाड़े कंठस्थ करने को कहते हैं। घर में पहाड़े रटते वक्त पच्चीस चौका सौ कहने पर सुदीप के पिताजी उसे टोकते हैं और पच्चीस चौका सौ नहीं ढ़ेड़ सौ होते हैं ऐसे आत्मविश्वास के साथ कहते हैं। पिताजी की गल्लती पर सुदीप की एक न चली । स्कूल में पच्चीस चौका डेढ़ सौ कहने पर मास्टरजी को गुस्सा आ जाता है। और उसपर बिफ र पड़ते है ''अबे कालिए ड़ेढ सौ नहीं सौ.....सौ । सुदीप ने डरते-डरते कहा 'मास्साहब पिताजी कहते हैं, पच्चीस चौका डेढ़ सौ होते हैं।''[1] मास्टरजी उसे थप्पड़ लगाते हैं । सुदीप के समझ में नहीं आ रहा था कि पिताजी झूठ क्यों बोलेंगे? एक दिन पिताजी उसे तीस वर्ष पूर्व की बात बताते हैं। चौधरी से तेरी माँ जब बीमार पड़ी थी तब ब्याज से पैसे लिये थे। पिताजी की नजर में तो चौधरी देवता है। उस वक्त चौधरी ने कहा था ''मैंने तेरे बुरे बखत में मदद करी ती । ईब तू ईमानदारी ते सारा पैसा चुका देना । सौ रूपए पर हर महीने पच्चीस रूपए ब्याज के बनते हैं। चार महीने हो गए हैं। ब्याज-ब्याज के हो गए हैं पच्चीस चौका डेढ़ सौ। तू अपणा आदमी है तेरे से ज्यादा क्या लेणा । डेढ़ सौ में से बीस रूपए कम कर दे । बीस रूपए तुझे छोड़ दिए । बचे एक सौ तीस । चार महीने का ब्याज । एक सौ तीस अभी दे दे । बाकी रहा मूल जिब होगा दे देणा । महीने के महीने ब्याज देते रहणा ।''[2] सुदीप के पिताजी सिर्फ इसलिए खुश थे कि बीस रूपए चौधरी ने छुट दिए । लेकिन चौधरी 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' बोलकर उन्हें लूटता रहा,इसलिए कि वे अज्ञानी थे। इस संदर्भ में तेजसिंह कहते हैं ''आजादी के इतने साल बाद भी जब दलितों को सामाजिक आर्थिक शोषण से मुक्ति और न्याय नहीं मिला तो वे सोचने के लिए मजबूर होंगे

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम ('पच्चीस चौका डेढ़ सौ' - कहानी से) पृष्ठ 82

2 वही, पृष्ठ 81

कि यह आजादी आखिर किसके लिए है।''[1] बहुत वर्षों बाद सुदीप अपनी कमाई के पैसों से पच्चीस-पच्चीस रूपये के गट्ठे लगाकर अपने पिताजी को समझाता है कि पच्चीस चौका सौ होते हैं। तब पिताजी ठीक समझते है और चौधरी जी की लूट के प्रति गुस्से से चौधरी पर अपशब्दों की बौछार करते हैं। अनपढ़ होने के कारण सुदीप के पिताजी की चौधरी द्वारा लूट एक समस्या के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। अपनी कहानी के जरिए अनपढ़ लोगों की समस्या को उजागर करना ओमप्रकाश वाल्मीकि की उक्त कहानी मुख्य उद्देश्य कहना होगा ।

4.7 नौकरी में प्रमोशन की समस्या -

नौकरी में जाति के कारण प्रमोशन मिलता है लेकिन जातीयता के कारण मिले हुए प्रमोशन में जाति ही रूकावट बनती है और आर.बी.के विरोध में दफ्तर के सारे लोग उसे कहीं ना कहीं फँसाने की कोशिश करते हैं ताकि किसी तरह प्रमोशन रूक जाए । ऐसी समस्या पर 'कुचक्र' कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी प्रखर दृष्टि डाली है।

'कुचक्र' कहानी में आर.बी.नामक एक एस.सी. युवक है। उसके खिलाफ थाने में निशिकांत ने रिपोर्ट दर्ज की है, इसलिए पुलिस उसे पकड़ कर ले गई है। निशिकांत का कहना है कि आर.बी. ने रात में गुंड़ों के साथ उसकी पिटाई की लेकिन वास्तविकता यह है कि आर.बी. ने गुंडों से निशिकांत को बचाया था। आर.बी. को फँसाने की उसकी यह चाल थी। कारण यह था कि आरक्षण के कारण आर.बी. का प्रमोशन होनेवाला है जो दलित है और दलित आर.बी. के अधीनस्थ काम करना निशिकांत की सवर्ण मानसिकता पर गहरा प्रहार है। इसलिए वह प्रमोशन रूकवाने के लिए बड़े अफसरों से आर.बी. की शिकायत करता है। निशिकांत के मन में सिर्फ एक बात है । आर. बी. की निचली जाति और उसका होनेवाला प्रमोशन । जो आरक्षण से होनेवाला है। आरक्षण संबंधी चंद्रभान प्रसाद लिखते हैं- ''रिझर्वेशन या आरक्षण स्वयं में कोइ सिद्धांत या दर्शन नहीं बल्कि

---

1 कुसुम चतुर्वेदी - नया मानदंड, अप्रैल-जून 2002, पृष्ठ 1

प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को प्राप्त करने को एक तकनीकी विधि है। पर भारत के तबके ने संचार माध्यमों के जरिए प्रतिनिधित्व के सिद्धांत को बार-बार आरक्षण का नाम देकर प्रचारित किया ।''[1] फिर इस प्रमोशन में सिर्फ आर.बी. ही नहीं, बाकी लोग भी थे। फिर निशिकांत का आर.बी. पर जलना और गुस्सा करना पूर्णत: गलत है।

आर. बी. पुलिस को बता रहा था कि मैंने निशिकांत को मारा नहीं बल्कि उसे गुंडोसे बचाया है और जीन गुंडोंने निशिकांत को पीटा है, उन्हें वह जानता भी है। फिर भी पुलिस आर. बी. पर भरोसा नहीं करती । उसके साथ निशिकांत ने ऐसा क्यों किया इन विचारों में वह डूब जाता है। '' आर. बी. और निशिकांत एक ही सेक्शन में काम करते थे। सब कुछ ठीक चल रहा था । लेकिन जिस रोज यह खबर फैली की हेडक्वार्टर से आनेवाली प्रमोशन सूची में आर. बी. का नाम भी है, दफ्तर में मातम से छा गया था। जैसे सब का हक्क छिनकर आर. बी. को दिया जा रहा हो । आर. बी. के समकक्ष या उससे वरिष्ठ पदों कार्यरत कर्मचारी ही नहीं, आर. बी. से कनिष्ठ कर्मचारी भी कटने से लगे थे।''[2] इस संदर्भ में सुदेश तनवीर का कथन दृष्टव्य है - ''दलित के साथ भेदभाव का व्यवहार न केवल उच्च जातियों द्वारा होता है बल्कि निचली मानी जानेवाली शुद्र जातियों द्वारा भी होता है।''[3]

एक दिन जब निशिकांत अपने बड़े अफसर शर्मा से आर. बी. के बारे में शिकायत कर रहा था तब आर. बी. ने उसे पकड़ा । इस बात को लेकर दोनों में तू--तू--मैं--मैं हो जाती है। दफ्तर का सारा वातावरण बदल गया । सभी दफ्तर के लोग आर. बी. से सिर्फ निचली जाति और उसका प्रमोशन के कारण बुरा बर्ताव करने लगे। ''आरक्षण से होनेवाली प्रमोशन गैर अनुसूचित जाति के कर्मचारियों को अन्यायपूर्ण लगते हैं।''[4] आर. बी. कुछ अलग-थलग सा पड़ गया था । इस झगड़े के कारण आर. बी. के पीछे निशिकांत जी जान से पड़ा था । उसे फँसाने के लिए अनेक तरह के हथकंड़े इस्तेमाल किए । फिर भी

---

1 संपा. सुब्रत रॉय - सहारा समय , 25 अक्तूबर ,2003, पृष्ठ 3
2 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम ('कुचक्र' कहानी से) पृष्ठ 104
3 कुसुम चतुर्वेदी - नया मानदंड - अप्रैल-जून, 2003, पृष्ठ 33
4 ओमप्रकाश वाल्मिकि - सलाम ('कुचक्र' कहानी से) पृष्ठ 104

आर.बी.नहीं फँसा। आखिर में दूसरों का इल्जाम निर्दोष आर. बी. पर लगा दिया निशिकांत ने, जिसके कारण आर. बी. पुलिस थाने में फँस गया । स्पष्ट कि उक्त कहानी में लेखक प्रमोशन के कारण खड़ी हुई समस्या को प्रस्तुत करता है।

4.8 मजदूरों की जातिवादी मानसिकता की समस्या -

भारतीय समाज को जाति पाँति का जो कलंक लगा है उससे न जाने कब छूटकारा मिलेगा ? इस सुंदर देश का यह विचित्र रोग है। भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से दलितों को बहिष्कृत और अस्पृश्य माना गया है। ईमानदारी से निष्काम सेवा इनका एकमात्र कर्तव्य रहा है। ऐसे ही एक प्रामाणिक युवक की कथा को ओमप्रकाश जी ने 'प्रमोशन' इस कहानी के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। मजदूर वर्ग वस्तुतः निम्न वर्ग है, किंतु इस वर्ग में आनेवाले लोगों में अर्थात मजदूरों में भी जातिवादी मानसिकता एक समस्यामूलक है।

'प्रमोशन' कहानी में सुरेश की स्वीपर से अकुशल कामगार पद पर पदोन्नति हो जाने से वह भावहीन होकर पूर्ण आनंदित मन से सबसे पहले यह खबर अपनी पत्नी को बताने के लिए हर्षोत्साही वातावरण में अपनी सायकल से घर चला जाता है। वह चाहता था कि पूरी बस्ती में मिठाई बाँटे पर .... पैसे ? इस एहसास से वह दुःखी होता है। यह खबर पत्नी को सुनाने के पश्चात, दरिद्रता के जर्जर में फँसी पत्नी तनख्वा कितनी बढ़ी?यह सवाल पूछती है। इसपर सुरेश कहता है ''तू हमेशा पैसों के ही बारे में ही सोचेगी। मान-अपमान भी तो कुछ होता है। अरी पगली अब हम 'भंगी' नहीं रहे मजदूर हो गए हैं, मजदूर ।''[1] मजदूर पे उसने कुछ खास जोर दिया था। उसके मन में सिर्फ एक ही नारा गूँज रहा था, जो उसने मजदूर रैली में देखा और सुना था। अभी इस पदोन्नति से वह भी इस रैली का हकदार बन गया था। इन्कलाब जिंदाबाद .... मजदूर मजदूर ......भाई-भाई, लेकिन उस बेचारे को क्या पता था कि जिस जाति में उसने जन्म लिया है उसका कलंक

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - घुसपैठिये ('प्रमोशन' कहानी से) पृष्ठ 45

हमेशा उसके साथ रहेगा । हिंदू समाज में दलितो के लिए नीच जाति का होना ऐसा अभिशाप है जिससे से उन्हें मानव होकर भी समाज जीवन में तुच्छता से देखा जाता है। जानवरों को भी उच्च समाज की नजरों में स्थान है लेकिन दलितों के प्रति अमानवीय व्यवहारों के किटानू ही उनके खून में छिपे हैं। राम अवतार पांडे के कारण सुरेश की पदोन्नति हुई थी। वह भी सुरेश को कहता है ''सुरेश हमने कहा था न कि एक दिन तुम्हें लेबर बनवा देंगे । अब कुछ पार्टी वार्टी हो जाए ।''[1] वह लाल झण्डे युनियन का सदस्य भी बन गया था। सुरेश प्रामाणिक काम के साथ सभी सभाओं रैलिओं में और मजदूरों के साथ सम्मिलित भी होने लगा था। पांडे के भाषण से सुरेश काफी प्रभावित होता था। लेकिन सुरेश के उत्साही जीवन में जाति के कारण अचानक बदलाव आ जाता है जिसके कारण उसकी अस्तित्वहीन संवेदना जाग जाती है। वर्कशॉप में दूध लाना और सब मजदूरों को बाँटना यह डयूटी हर रोज किसी न किसी वर्कर पर आ जाती थी। एक दिन सुरेश पर भी यह डयूटी सौंपी गयी । सुरेश दूध लेकर आया और मजदूर भाईयों को आवाज दी । लेकिन मजदूरों में कोई भी हलचल दिखाई न दी । ''सुरेश दूध की केन के पास खड़ा उनके आने का इंतजार कर रहा था। जब घंटे भर तक भी कोई दूध लेने नहीं आया तो उसकी परेशानी बढ़ गयी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे । ज्यादा देर होने पर दूध फट सकता था।''[2] सुरेश इस भाई-भाईयों के वर्णवादी स्वभाव से अपरिचित था। कुछ नहीं होगा इन भाई-भाईयों के नारे से क्योंकि यह भाई-भाई का नारा सिर्फ दिखावा है। ब्राह्मणवादी समाज रचना ने न जाने कितने दलितों को कमजोर बना दिया है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने अपने दलित मजदूरों के संदर्भ में कहा है- ''इस देश के दलित मजदूरों को दो महत्त्वपूर्ण शत्रुओं से सामना करना है और वे दो शत्रु हैं ब्राह्मणवाद और पूँजीवादी सत्ता ।''[3] सुरेश सिर्फ दलित है इसलिए सामाजिक सहयोग से भी उसे वंचित रहना पढ़ रहा था । डॉ. बलवंत साधु कहते है -'' दलित मानवी प्रगति में सब से पिछड़ा

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - घुसपैठिय ('प्रमोशन' कहानी से), पृष्ठ 45

2 वही, पृष्ठ 49

3 डॉ. रावसाहेब कसबे - आंबेडकर वाद तत्व आणि व्यवहार, पृष्ठ 49

और दबाया हुआ सामाजिक वर्ग है''[1] यहा सुरेश को भी ऐसे ही हालात से गुजरना पड़ रहा था। बेचारा सुरेश दूध की रखवाली कर रहा था। आखिर उसने सुपरवाईजर गौत्तम साहब से शिकायत की। हर रोज दूध पर टूटनेवाले मजदूर आज अचानक ? उनकी समझ में भी नहीं आ रहा था कि आखिर हो क्या गया है ?

गौत्तम साहब ने अब्दूल को विश्वास में लेकर पूछने पर वह बताता है ''साहब आपको पता नहीं सुरेश स्वीपर है .... उसके हाँथ की चीज कोई कैसे खा-पी सकता है।''[2] अब्दूल के इस कथन से पता चलता है कि भारतीय एकात्म जीवन कितना खण्डित हो गया है। यहाँ गंगाधर पानतावणे का कथन दृष्टव्य है -''अस्पृष्यता से भारतीय एकात्म जीवन खण्डित हुआ है, जाति व्यवस्था के निर्मूलन के सिवा देश संपन्न और समृद्ध नहीं होगा ।''[3] सुपरवाईजर को भी लगा जैसे वर्कशॉप की छत उसके सिर पर गिर पड़ी है और उसका वजूद मलबे में दब गया है। उसने जोर से आवाज दी उस पांडे को बुलाकर लाओ। दलितों का सिर्फ मतलब के लिए फायदा उठाना यही कहानी द्वारा स्पष्ट हुआ है। मजदूर-मजदूर भाईयों के बीच जातिवादी भावना पर ओमप्रकाश वाल्मीकि ने गहरा आक्रोश प्रकट किया है। मजदूर जैसे निम्न दर्जे के कर्मचारियों में भी जातिवादी मानसिकता रहा करती है जिसका चित्रण ओमप्रकाश वाल्मीकि ने यथार्थता से किया है।

4.9 निवास की समस्या -

हमारे समाज में ऐसे कई लोग है जिन्हें दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं होती । लेकिन वे हारते नहीं । अपने तमाम कष्ट और कोशिशों पर विश्वास करके अच्छे भविष्य और अच्छे सपनों की तलाश में निकल पड़ते हैं। ऐसे ही गरीब पति-पत्नी अपना भविष्य उज्ज्वल करने हेतु गाँव छोड़ते हैं, लेकिन समाज में व्याप्त वासनांध लोग उनकी

---

1 डॉ. बलवंत साधु - प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना, पृष्ठ 23
2 ओमप्रकाश वाल्मीकि - घुसपैठिये ('प्रमोशन' कहानी से), पृष्ठ 49
3 गंगाधर पानतावणे - विद्रोहाचे पाणी पेटले आहे, पृष्ठ 10

गरीबी का फायदा उठाकर उन्हें जीवन से तिरस्कृत करने की कोशिश करते हैं। 'खानाबदोश' में कहानीकार ने एक ओर दलितों के जीवन में स्थित निवास की समस्या को उजागर किया है, साथ-साथ सवर्ण समाज में स्थित कामांध वृत्ति पर व्यंग्य भी किया है।

सुकिया और मानो ये गरीब पति-पत्नी अपना गाँव छोड़कर ईंटें तैयार करने की भट्टे पर काम कर रहे हैं। उनका सिर्फ एक ही सपना है कि खुद का पक्की ईंटों का घर । इसलिए दोनों पूरी लगन से अपना खून-पसीना एक करके रात दिन कड़ी मेहनत कर रहे थे। वहाँ की देखभाल असगर ठेकेदार करता था। एक दिन मुख्तार सिंह की जगह उनका बेटा सुबेसिंह भट्टे पर आया, मालिक कुछ दिनों के लिए बाहर चले गए थे। मुख्तार सिंह स्वभाव से बुरा था। उसने ईंटे के भट्टे पर काम करनेवाली किसनी को अपने जाल में फँसाकर उसकी जिंदगी बरबाद कर दी । किसनी आपना पति महेश की कुछ भी न सुनती थी। किसनी जिस रास्ते पर चल रहीं थी वहाँ से वापस आना असंभव था।

मानो ने अपने पति से पक्की ईंटों का घर बँधवाने की जिद्द की जिसके लिए रात-दिन मेहनत करने के बाद भी लगभग असंभव था। फिर भी मानो कहती है ''कुछ भी करो .... तुम चाहो तो मैं दिन-रात काम करूँगी .... मुझे एक पक्की ईंटों का घर चाहिए अपने गाँव में .... लाल सुर्ख ईंटों का घर ।''[1]

सुकिया और मानो अपने काम से मतलब रखते थे। लेकिन दोनों की गृहस्थी को सुबेसिंह की नजर लग जाती है। सुबेसिंह असगर ठेकेदार से कहता है आज मानो को दफ्तर बुलाओ । असगर जानता था कि यह शैतान है और सुकिया भी इस बुलावे पर हड़ब ड़ा गया । असगर ठेकेदार के साथ जयदेव जाता है। जयदेव एक ब्राह्मण लड़का है। वह सुकिया और मानो के साथ काम करता है । मानो की जगह जसदेव का आना सुबेसिंह को अच्छा नहीं लगता और वह जसदेव को पीटता है। आज जसदेव हमारे कारण पीटा गया इस कारण मानो उसे रोटी देने जाती है। लेकिन वह रोटी को टाल देता है। मानो उसे रंगे हाथ पकड़ती है। ब्राह्मण उसके हाथ की रोटी कैसे खाएगा ? दलित स्त्रियों तो ऐसे परंपरागत

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम ('खानाबदोश' कहानी से) पृष्ठ 127

ब्राह्मणवादी व्यवस्था के संघर्ष को हमेशा से ही झेलती आयी है और उसके साथ जूझती आयी है । कौसल्या बैसन्त्री की आत्मकथा बताती है कि ''दलित स्त्री दूसरी स्त्रियों की तरह केवल स्त्री नहीं होती । स्त्री होने के साथ-साथ वह दलित होने का दंश भी झेलती है। समाज में दलित और परिवार में स्त्री दोनों ही रूपों में वह उपेक्षा और उत्पीड़न की शिकार है।''[1] अपने पति पर पूर्णरूप से विश्वास रखनेवाली मानो पर सुबेसिंह का कोई असर नहीं पड़ता । फिर किसनी को बरबात होते हुए मानो ने देखा भी था। सुबेसिंह को भी लगने लगा था कि मानो को फुसलाना आसान नहीं । उसकी कोशिशें धाराशाही हो जाती हैं। इसलिए वह दूसरे ढ़ंग का इस्तेमाल करता है। मानो और सुकिया को तंग और परेशान करना ही वह एकमात्र कर्तव्य समझने लगता है। लेकिन सुका और मानो जैसे गरीबों को तंग करना कहा का पुरूषार्थ है। इस संदर्भ में डी.आर.नीम कहते है ये लोग ''सभी प्रकार से कमजोर हैं, वह सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक पहलुओं पर सवर्णों का मुकाबला नहीं कर सकते।''[2] सुबेसिंह ने अपनी कपट बुद्धि से आखरी चाल चली । मानो और सुकिया ने जो कच्ची ईंटें बनाई थी उसे बेदर्दी से रौंद ड़ाला, कुचल डाला था। इससे उनकी रात-दिन की कड़ी मेहनत बेकार हो जाती है। अपने सपनों की पूर्ति करने हेतु रात-दिन की कड़ी मेहनत करके जो ईंटें बनाई थीं उसकी दयनीय अवस्था देखकर मानों की चींख निकल पड़ी। ''मानो का हृदय फटा जा रहा था, टूटी-फूँटी ईंटों को देखकर वह बौरा गई थी। जैसे किसी ने उसके पक्की ईंटों के मकान को ही धाराशाही कर दिया था।''[3]

दूसरी ओर ठेकेदार ने सुबेसिंह के शिकवे पर साफ कहा कि टूटी-फूटी ईंटों की मजदूरी नहीं मिलेगी । सुकिया भी दु:खों के सागर में डूब गया । उसने मानो का हाथ पकड़ा और कहा 'चल' ये लोग हमारा घर ना बसने देंगे । उनका सपना टूटकर 'खानाबदोश' हो गया । वे दोनों बेघर मन से सपने को सपना ही बनाकर भारी मन से अगले पड़ाव की तलाश में यात्रा पर निकल पड़े जो सिर्फ दिशाहीन है।

---

1 कुसुम चतुर्वेदी - नया मानदंड - अप्रैल-जून 2003, पृष्ठ 17
2 डी. आर. नीम - आम्बेडकर जीवन दर्शन, पृष्ठ 39
3 ओमप्रकाश वाल्मीकि - सलाम ('खानाबदोश' कहानी से), पृष्ठ 131

स्पष्ट है कि उक्त कहानी दलितों की निवास समस्या का उद्घाटन करती है और कुलीन समाज की कामांध मनोवृत्ति पर प्रहार भी करती है।

4.10 मेडिकल कॉलेज में दलितों की समस्या -

सभी क्षेत्र में दलितों पर अत्याचार होते आये हैं। फिर मेडिकल कॉलेज की यथार्थता को ओमप्रकाशजी कैसे छोड़ते ? अपनी ' घुसपैठिये ' कहानी में दलित छात्रोंपर होते अन्याय का पर्दा फाश किया है।

उक्त कहानी में फाइनल वर्ष की सुजाता की मौत के बाद मेडिकल कॉलेज में सुभाष सोनकर की यह दूसरी मौत हुई । आखबारों ने इसे आत्महत्या का मामला बनाकर नजरअंदाज किया । एक ही साल में मेडिकल कॉलेज में दो-दो हत्याओं के बाद भी शहर गूँगा ही रहा ।

सुभाष सोनकर का सिर्फ इतना अपराध था कि उसके माता-पिता उसे डॉक्टर बनाना चाहते थे। रमेश चौधरी सामाजिक कार्यकर्ता है। वे एक दिन राकेश साहब को फोन पर सुभाष सोनकर की मौत की खबर सुनाते हैं। राकेश साहब को इस बात से बहुत दु:ख होता है और भूतकाल की घटना उनके मन पर दस्तक देने लगती है। रमेश चौधरी मेडिकल कॉलेज के चार लड़कों को लेकर राकेश साहब के घर आये थे । उन चार लड़कों में सुभाष सोनकर भी था । अपने मेडिकल कॉलेज में दलित छात्रोंपर होते अत्याचार की हालत बता ने के लिए वे चार लड़के रमेश चौधरी के साथ आए थे। उनमें से अमरदीप ने राकेश साहब को जो बातें बताई वे सिर्फ यातनामयी और दलित छात्रों को आत्महत्या के लिए प्रवृत्त करने लायक हैं।

''कल पूरा दिन होस्टेल के एक कमरे में विकास चौधरी और सुभाष सोनकर को दरवाजा बंद करके पीटा गया ।''[1] रॅगींग होती तो फर्स्ट इअर के सभी छात्रों के साथ होती । लेकिन सिर्फ इन दोनों को पीटा गया था। अमरदीप हालात का ब्यौरा दे रहा

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - घुसपैठिये, पृष्ठ 15

था " दलित छात्रों को अलग खड़ा करके अपमानित करना तो रोज का किस्सा है। प्रवेश परीक्षा के प्रतिशत अंक पूछकर थप्पड़ या घूँसों का प्रहार होता है। जरा भी विरोध किया तो लात पड़ती है। यह दो-चार दिन नहीं साल-साल चलता है। यह पिटाई कॉलेज या छात्रावास तक ही सीमित नहीं है। शहर में कॉलेज तक जानेवाली बस में भी पीटाई होती है। कोई एक सीनियर चलती बस में चिल्लाकर कहता है " इस बस में जो भी चमार स्टूडेंट है वह खड़ा हो जाए .... फिर उसे धाकियाकर पिछली सीटों पर ले लाया जाता है, जहाँ पहले से बैठे सीनियर लात घुसों से उसका स्वागत करते हैं।"[1] कैसी है यह जाति व्यवस्था जिससे दलितों को त्रस्त किया है। यहाँ सुदेश तनवीर का कथन दृष्टव्य है - " वर्ण और जाति व्यवस्था से दुष्प्रभावित शिक्षा-व्यवस्था दलितों के मन-मस्तिष्क को कुंद किए बिना नहीं छोड़ती ।"[2] बिना बात के किसी को परेशान करना और इसके पीछे का कारण और मानसिकता सिर्फ जाति ! कितना दु:खदायी है यह सब ? एक दिन प्रणव मिश्रा ने सोनकर को भी बस में बेदर्दी से पीटा था और बाबासाहेब के नाम पर गाली दी थी। इतना ही नहीं लड़कों को होस्टल नं. एक में घूसने नहीं दिया जाता सिर्फ दो नं. में ही रखा जाता है, और गर्ल्स होस्टल की भी यही स्थिति थी । कॉलेज के मैनेजमेंट को दलितों का मेडिकल कॉलेज आना अतिक्रमण लगता है। प्रैक्टिकल परीक्षा में भी भेदभाव किया जाता है। भारतरत्न डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर को भी ऐसे कई प्रसंगों का सामना करना पड़ा था । "डॉ. आंबेडकर अपनी सारी जिंदगी इसी छुआछूत और जाति व्यवस्था से संघर्ष करते रहे । वे इसे हिंदू वर्ग का विशाक्त रोग मानते थे। उन्होंने उसे इस अमानवीय रोग से मुक्त करने का यथाशक्य प्रयत्न किया पर वे सफल नहीं हो पाये ।"[3] परिणामत: आज भी हमारे समाज में ऐसे विचित्र प्रकारों का सामना दलितों को करना पड़ रहा हैं। जाति प्रथा में डूबे "विपरीत बुद्धिवाले प्राणी सर्वत्र विपरीत ही सोचते हैं और देखते हैं। वे कहते भी उल्टा हैं और

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - घुसपैठिये ('घुसपैठिये' कहानी से) पृष्ठ 16
2 सम्पा.कुसुम चतुर्वेदी - नया मानदंड - अप्रैल-जून 2003, पृष्ठ 35
3 डा.भागचंद्र जैन भास्कर - भारतरत्न डॉ. अम्बेडकर और बौध्द धर्म,पृष्ठ 43

विचार भी उनके उल्टे ही होते हैं।"[1] स्पष्ट है कि हरिकिशणदास आग्रवाल के विचार जैसी ही सवर्णों के मानसिकता लगती हैं। ऐसे ही विचित्र और उल्टे विचारों से नाहक बेकसूर दलित बलि हो रहे हैं। मेडिकल कॉलेज की डिन डा. भगवती उपाध्याय का कहना है कि आरक्षण से मेडिकल का स्तर गिर रहा है। आरक्षण से मेडिकल कॉलेज में प्रवेश पाना उन्हें भी 'घुसपैठ' लगती है।

राकेश साहब ने ये हालत चुप चाप सुन लिए । बहुत जगह कोशिश करने पर भी इनके प्रति रवैया नहीं बदला । राकेश साहब तो क्या करते ? "सोनकर को पहली ही परीक्षा में फेल कर दिया गया था। क्योंकि उसने प्रणव मिश्रा के खिलाफ पुलिस में नामजद रपट लिखाने का दुस्साहस किया था। डिन और अन्य प्रोफेसरों तक शिकायत पहुँचने की हिमाकत की थी, यह भूलकर कि वह इस चक्रव्यूह में अकेला फँस गया है, जहाँ से बाहर आने के लिए उसे कौरवों की कई अक्षौहिणी सेना और अनेक महारथियों से टकराना पड़ेगा। परीक्षाफल का व्यूह भेदकर सोनकर बाहर नहीं आ पाया था।"[2] और उसके जीवन की यात्रा विवशता वश समाप्त हो गई । सवर्ण के अत्याचारों से और एक बेकसूर दलित छात्र मारा गया । फोन किसी तरह रखने का प्रयास करते हुए राकेश धम्म से कुर्सी में धंस गया और उसके मुंह से वाक्य निकला "सोनकर यह क्यों किया तुमने ....।"[3] सुवर्णों की मंडली और उनके घटिया विचार और कर्मों से नाहक निर्दोष सोनकर की जान गई। आज दलितों का प्रमुख सृजनात्मक लक्ष्य यह है कि सभी प्रवंचित, पीड़ित लोगों को पहचान कर उनके प्रति न्याय करे । जातीय पूर्वग्रह के कारण निर्दोष सोनकर की मृत्यु गणंतत्र व्यवस्था और सवर्ण व्यवस्था पर गहरी अलोचना करती है।

कहना होगा कि उक्त कहानी मेडिकल कॉलेज के दलित छात्रों को किन यातनाओं से गुजरना पड़ता है इस पर कटु प्रहार करती है।

---

1 हरिकिशणदास आग्रवाल - हमारी परंपरा , पृष्ठ 69

2 ओम्प्रकाश वाल्मीकि - घुसपैठिये, पृष्ठ 19

3 वही, पृष्ठ 19

4.11 दलितों में भी उच्च-नीच की समस्या-

दलित अपने आप में कोई जाति नहीं हैं। दलित खुद ही उत्पीड़ीत है, फिर भी एक दलित दूसरे दलित पर उच्च-नीच भाव से पेश आता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलितों में स्थित उच्च-नीच की भावना को भी समस्या के रूप में कहानी में ' शवयात्रा' कहानी में प्रस्तुत किया है।

यह कहानी बल्हारों के परिवार को केंद्रित करती है। चमारों के गाँव में जोहड़ के पार उमर ढ़ली हुई, दयनीय अवस्था में गरीब सुरजा का घर था,जो बल्हार है। उसके साथ उसकी बेटी भी रहती थी। शादी के तीन साल बाद सन्तो विधवा होकर अपने पिता सुरजा के घर आयी थी। घर की जिम्मेदारी सुरजा ही संभालता था। सुरजा बढ़ती उम्र के कारण कमजोर होता जा रहा था। उसका बेटा शहर में नौकरी करता था। लेकिन सुरजा अपने पुरखों के बसे गाँव और घर को छोड़कर बेटे के साथ शहर जाने को तैयार नहीं था।

जब ***चमा***रों को बल्हारों की जरूरत पड़ती तब जोहड़ किनारे से आवाज लगा देते थे। सुरजा का बेटा कल्लन अच्छी नौकरी पर था, लेकिन इस गाँव के चमारों की नजरों में वह नीच जाति का यानी ''उनकी दृष्टि में वह अभी भी बल्हार ही था, समाज व्यवस्था में सबसे नीचे यानी अच्छुतों में भी अच्छूत।''[1] पिताजी का घर खराब हो जाने के कारण नया घर बँधवाने की योजना उसके मन में आती है और वह शहर से पैसे लेकर आता है और ईटों का ट्रक मँगवाता है। ''जोहड़ के पार ईंटें उतरती देखना गाँव के लिए किसी आश्चर्य से कम न था। पूरे गाँव में भूचाल आ गया था।''[2] चमारों के मन में इनके प्रति ईर्श्या-भाव पैदा हो गया और वे नये घर को विरोध करने लगे, गाँव का प्रधान सिंह उन पर क्रोधित होता है और कहता है ''अंटी में चार पैसे आ गए तो अपनी औकात भूल गया । बल्हारों को यहाँ इसलिए नहीं बसाया था कि हमारी छाती पर हवेली खड़ी करेंगे, वह जमीन जिस पर तुम रहते हो, हमारे बाप -दादों की है। जिस हाल में हो ...... रहते रहो

1 ओमप्रकाश वाल्मीकि - घुसपैठिये ('शवयात्रा' कहानी से) पृष्ठ 36

2 वही, पृष्ठ 98

.... किसी को ऐतराज नहीं होगा । सिर उठाके खड़ा होने की कोशिश करोगे तो गाँव से बाहर कर देंगे।''[1] जयप्रकाश कर्दम कहते हैं - ''जातविहीन समाज की स्थापना करने के लिए जातिवादियों के विरूद्ध संघर्ष करनेवाला दलित समाज जाति के आधार पर आपस में विभक्त है। ब्राह्मणवादी सोच में संचलित दलित समाज में एक जाति दूसरी जाति के साथ ऊच्च-नीच का व्यवहार करती है। जाति का यह द्वंद्व दलित समाज का एक कड़ुआ और कठोर सच है।''[2] पिताजी के लिए घर बांधने आए कल्लन को यह लोग घर नहीं बांधने देते । कोई सुतार इनकी मदद नहीं करता । कल्लन की दस साल की बेटी देहाती वातावरण से बीमार पड़ती है। गाँव में सिर्फ एक डॉक्टर था वह भी उसकी मदद नहीं करता । बेअसर वाली गोलियाँ देता है जिससे सलौनी की तबीयत बिगड़ती गई। उसे शहर ले जाना आवश्यक था। कल्लन चमारों के पास बैलगाड़ी माँगता है, लेकिन वे लोग बल्हारों को गाड़ी नहीं देते । हजारों साल से उपेक्षित एवं अमानवीय जीवन जीकर भी इनमें मानवता का गुण नहीं उभरा और दूसरे दलित के साथ अमानवीयता का व्यवहार करने लगे - डॉ.धर्मवीर लिखते है - ''दलितों में फैली हिंदू संस्कृति देश के दलितों को एक नहीं होने दे रही है। हिंदू संस्कृति के छल-प्रपंच व कपटी तीर से घायल देश के सभी दलित अलग-थलग पड़े हुए हैं।''[3] पैदल ले जाने के कारण सलोनी का जिस्म धूप से निढ़ाल हो रहा था। अंतत: अचानक सलोनी का देह 'शव'में परिवविर्तत हुआ और उनकी पैदल यात्रा 'शवयात्रा' में परिवर्तित होकर वापस घर की ओर दु:ख भरे माहौल में और परिस्थिति पर आक्रोश करते हुए लौटी। उनकी मदद करनेवाला कोई न था। दलितों में भी यह भेदभाव पूर्ण व्यववहार निश्चय ही सोचनीय लगता है। बल्हारों में श्मशान जाने का अधिकार स्त्रियों को नहीं था, लेकिन अब क्या करते कोई चारा भी नहीं था। क्योंकि चमारों के गाँव में एक ही बल्हार परिवार था। दलित की जाति-जनित घृणा और उपेक्षा के मेघों से उनके जीवन का आकाश सदैव अच्छादित रहता है। जहाँ वर्ण और जाति के विरोध में लड़ने वाले दलितों की

---

1 ओमप्रकाश वाल्मीमि - घुसपैठिये (' शवयात्रा' से), पृष्ठ 39
2 सम्पा. कुसुम चतुर्वेदी - नया मानदंड, त्रैमासिक, जून 2003, पृष्ठ 18
3 वही - पृष्ठ 24

अमानवीयता भी अनुचित और अमान्य प्रकारों का समर्थन करती दिखाई देती है। इससे स्पष्ट है कि दलितों मे भी उच्च-नीच का फर्क करनेवाले दलित जातियाँ आपस में अमानवीयतापूर्ण व्यवहार कर रही हैं। खुद दलित जातीय उत्पीड़न बने और निर्धन, शोषित लोग उच्च वर्णव्यवस्था के प्रति अपना तीव्र आक्रोश प्रस्फुटित करने की अपेक्षा आपस में उच्च-नीच का भेद लाकर अपनी एकता खण्डित कर रहे हैं। ऐसी विचित्र घटना के प्रति ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'शवयात्रा' कहानी के माध्यम से अपना जाहिर निषेध व्यक्त किया है।

निष्कर्ष -

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों का मूल्यांकन करने के पश्चात् मेरा यह विनम्र निष्कर्ष है कि उनकी अधिकांश कहानियों में दलितों के शोषण और उन पर किए गए अत्याचार को वाणी दी है। स्वयं ओमप्रकाश वाल्मीकि ने जातिय दंश के जहर से जितना सामना किया है उससे कई ज्यादा भोगा भी है। इसीलिए उनकी कहानियाँ जातिवादी समाज की गंदी मानसिकता को समग्र रूप में प्रस्तुत करने की सफल कोशिश करती हैं। उनकी कहानियाँ में दलित जातियों को केंद्र में रखकर ही विषय-विविधता मिलती है। उनकी कहानियों दलित जातियों के कड़ुवे सच और उनके जीवन की व्यापकता को उजागर करके दलित जीवन की यथार्थता को रूपायित कर प्रगतशिल विचारों की मांग करती हैं। विवेच्च्य रचनाकार की अधिकांश कहानियाँ समस्या प्रधान हैं। इन कहानियों में मानव संवेदना को जगाने की चुनौती है। लेखक ने जातिवाद की समस्या को प्रमुख रूप में उभारा है जिसमें कोई भी बात अव्युक्तिपूर्ण नहीं।

ओमप्रकाश वाल्मिकि की कहानियाँ दलित जीवन की यथार्थ स्थिति, दशा और बहुत सारे प्रश्न लेकर प्रस्तुत हुई हैं। इनमें दलितों के साथ हुए अत्याचार, अनाचार, लूट, शोषण, यातना और प्रताड़ना आदि समस्याओं के मूल कारणों पर प्रकाश डाला हुआ दिखाई देता है।

विवेच्य कहानियों में जाति-समस्या के साथ-साथ परंपरा के निर्वाह और परंपरागत व्यवसाय की कुछ समस्याओं ने अपना खाता खोला है। निर्दोष दलित को गोहत्या के जुर्म में सजा दी जाती हैयह समस्या तो महाभयानक रूप धारण करती है। कुछ लोग जाति की हीनता के कारण दबे रहकर कुछ गलत कदम उठाते हैं और विचित्र स्थिति का सामना करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। बलिप्रथा की समस्या आदमी को कहीं का नहीं छोड़ती इसका महत्त्वपूर्ण उदाहरण ' भय ' कहानी में मिलता है। साहुकार द्वारा अनपढ़ लोगों की लूट प्रखर रूप में प्रस्तुत हुई है। नौकरी में जाति के कारण, प्रमोशन तो मिलता है लेकिन यही जाति उसके प्रमोशन के पश्चात सेवा कार्य में रूकावट बन जाती है। अपने जाति की श्रेष्ठता और दूसरी जाति की कनिष्ठता का यह प्रस्तुतीकरण जातिवाद को बढ़ावा देनेवाला है। दलितों के हाथों दूध न पीने की समस्या गरीब दलित मजदूर सुरेश की भावनाओं के साथ खिलवाड़ करती है। मेडिकल कॉलेज में दलितों पर हुए अत्याचार और उनका शोषण याने इन्सानियत की निंदा है। दलितों में भी उच्च-नीच की समस्या है, जिसके कारण बेकसूर मासूम बच्ची की जान जाती है। ऐसी असहाय घटना को भी वाल्मीकि ने बेहिचक प्रस्तुत किया है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में भी दलित समस्या व्यापक रूप धारण कर चुकी हैं, वह कम होने की अपेक्षा अधिक तीव्र दिखाई देती है। वाल्मीकि की कहानियों में दलित जीवन की विवशता ही अधिक दृष्टिगोचर होती है। ऐसी स्थिति में ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने आप को रोक नहीं पाए और अपना कर्तव्य समझकर अपनी लेखनी को उन्होंने मुक्त किया । परिणाम स्वरूप उनकी कहानियों ने यथार्थता को साक्षी मानकर जन्म लिया । खुद दलित होने से वे अनुभवदग्ध जीवन से उबलकर निकले हैं इसलिए अपनी धड़कनों को पात्रों के माध्यम से कहानियों में अंकित करने की कोशिश की है।